माननीय न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार और टी.पी.एस. मान, जे. के समक्ष

आर. एल. संखला, - अपीलकर्ता

बनाम

माननीय पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ एवं अन्य,- प्रतिवादी

L.P.A. No. 239 of 2007

8 मार्च, 2011

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 235- हरियाणा सिविल सेवा (दंड एवं अपील) नियम, 1987- नियम 4(ए)- पंजाब सिविल सेवा नियम, वॉल्यूम 1, भाग-1- नियम 3.26 का खंड (डी) - उच्च न्यायालय की सिफारिश पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को बरकरार रखने वाले एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती, साथ ही समीक्षा आवेदन को खारिज करना, याचिकाकर्ता को न्यायिक सेवा में नियुक्त किया गया और अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश- उच्च न्यायालय के रूप में पदोन्नत किया गया, जिसके तहत अनुशासनात्मक शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसे निलंबित कर दिया गया। नियम 4 (ए) और प्रमुख दंड लगाने के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई पर विचार किया गया - निरीक्षण न्यायाधीश ने ईमानदारी को संदिग्ध के रूप में दर्ज किया - रेनर्क्स ने संकेत दिया कि पुनरावृत्ति से बदबू आ रही थी और बार के सदस्यों और न्यायिक अधिकारी का विचार था कि अपीलकर्ता भ्रष्ट था - अपीलकर्ता ने दावा किया कि ईमानदारी के संबंध में टिप्पणी की गई थी विभागीय जांच के बिना किया गया, व्यक्तिपरक और सुनी- सुनाई बातों पर आधारित - प्रतिवेदन खारिज - निलंबन रद्द करने के लिए याचिका दायर - स्पष्ट आदेश पारित करने के निर्देश के साथ निपटारा, निलंबन आदेश वापस लिया गया और बहाल किया गया - अपीलकर्ता ने फिर से कार्यभार संभाला, छुट्टी के बाद बहाली का दावा किया गया, जिससे यह अनुमान लगाया गया कि कुछ नहीं हुआ उसके विरुद्ध प्रतिकूल- तत्पश्चात इलिग कोर्ट ने उसकी ए.सी.आर. में दर्ज कर दिया। सत्यनिष्ठा संदिग्ध होने के कारण - अपीलकर्ता ने दावा किया कि रिपोर्ट सामान्य न्यायालय में दर्ज नहीं की गई और यह एक संपार्श्विक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए शक्ति का रंगीन प्रयोग है - प्रतिकूल टिप्पणियों को रद्द करने के लिए याचिका दायर की गई जिसे वापस ले लिया गया - अपीलकर्ता को सार्वजनिक हित में अनिवार्य रूप से सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया गया - एकल पीठ ने याचिका खारिज कर दी विस्तृत आदेश के साथ।

अभिनिर्धारित किया गया कि उस अपीलकर्ता को निर्धारित मापदंडों के अनुसार और व्यापक जनहित में सेवानिवृत्त कर दिया गया है। अनुच्छेद 235 के अंतर्गत उच्च न्यायालय काली भेड़ों को अनुशासित करने या मृत लकड़ी को हटाने की दृष्टि से न्यायिक अधिकारियों के प्रदर्शन का आकलन करने का पूरी तरह से हकदार है। उच्च न्यायालय की संवैधानिक शक्ति को किसी नियम या आदेश द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता है। न्यायिक अधिकारी की संदिग्ध सत्यनिष्ठा से संबंधित एक प्रविष्टि यह राय बनाने के लिए पर्याप्त होगी कि उसने संस्था के लिए अपनी उपयोगिता खो दी है।

आर. एल. संखला बनाम माननीय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ और अन्य 919

(एम.एम. कुमार, जे.)

अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को दंडात्मक के रूप में दर्ज नहीं किया जा सकता है और न ही इसे बोलने वाला आदेश होना आवश्यक है। अपील खारिज।

(पैरा 15, 18, 20, 22)

जे.के. सिब्बल, वरिष्ठ वकील, सपन धीर के साथ, अपीलकर्ता के वकील।

कर्मिंदर सिंह वालिया, प्रतिवादी के वकील।

माननीय न्यायमूर्ति एम.एम. कुमार, जे.

(1) पत्र पेटेंट के खंड एक्स के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई त्वरित अपील 18 सितंबर, 2007 के फैसले के खिलाफ निर्देशित है, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने सिफारिश पर 8 अगस्त, 2002 को अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को बरकरार रखते हुए पारित किया था। प्रतिवादी संख्या 1-उच्च न्यायालय का। चुनौती का विषय अपीलकर्ता द्वारा दायर समीक्षा आवेदन को खारिज करने का 12 अक्टूबर, 2007 का आदेश भी है।

(2) पहले मामले के संक्षिप्त तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि विवाद को उसके उचित परिप्रेक्ष्य में रखा जा सके। अपीलकर्ता को 11 मई, 1981 को न्यायिक सेवा में नियुक्त किया गया था। उन्हें दिसंबर, 1989 में अतिरिक्त वरिष्ठ उप-न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत किया गया था और फिर जून, 1993 में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में पदोन्नत किया गया था। अंततः, उन्हें अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत किया गया था। 2 फरवरी 1998 को फ़रीदाबाद में शामिल हुए। उन्होंने दावा किया है कि 6 सितंबर, 2000 तक, उनके पूरे सेवा करियर में उन्हें कभी भी प्रतिकूल प्रविष्टि नहीं दी गई, जो बिना किसी दोष के रही। हालाँकि, 16 मई, 2000 को, उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 235 के साथ पढ़े गए हरियाणा सिविल सेवा (दंड और अपील) नियम, 1987 (संक्षिप्तता के लिए '1987 नियम') के नियम 4-ए के तहत अनुशासनात्मक शक्ति का प्रयोग किया। बड़ा जुर्माना लगाने के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई पर विचार करते हुए उन्हें निलंबित (पी-1) कर दिया गया। हालाँकि, वर्ष 1999-2000 के लिए में निरीक्षण न्यायाधीश की टिप्पणियों से उन्हें अवगत कराया गया, जिसमें कहा गया था कि उनकी सत्यनिष्ठा संदिग्ध है। टिप्पणियों से यह भी संकेत मिलता है कि उनकी प्रतिष्ठा खराब थी, और बार के सदस्यों और न्यायिक अधिकारियों का आम तौर पर विचार था कि अपीलकर्ता भ्रष्ट था। अपीलकर्ता ने दावा किया है कि बिना किसी नियमित विभागीय जांच के उनकी सत्यनिष्ठा के संबंध में प्रतिकूल टिप्पणियाँ की गईं। वे टिप्पणियाँ प्रकृति में व्यक्तिपरक थीं और अफवाहों पर आधारित थीं। अपने दावे के समर्थन में, अपीलकर्ता ने जिला बार एसोसिएशन, फ़रीदाबाद द्वारा पारित 22 मई, 2000 के एक प्रस्ताव पर भरोसा जताया है, जो बताता है कि पलवल में उप-न्यायाधीश और फ़रीदाबाद में अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में उनके कार्यकाल के दौरान, उनके द्वारा कुर्सी के दुरुपयोग का एक भी मामला नहीं था और जिला बार एसोसिएशन ने

विभागीय जांच (पी-2) लंबित रहने तक उन्हें सेवा में बहाल करने के लिए प्रतिवादी नंबर 1-उच्च न्यायालय को अपील भेजी थी। अपीलकर्ता ने प्रेस रिपोर्टों पर भी भरोसा किया है। माननीय निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियाँ 2 सितंबर, 2000 को उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार (पी-3) के माध्यम से अपीलकर्ता को सूचित की गईं। अपनी सत्यनिष्ठा पर संदेह करने वाली प्रतिकूल टिप्पणियों को हटाने के लिए, अपीलकर्ता ने 25 सितंबर, 2000 (पी-5) को एक अभ्यावेदन दिया, जिसे माननीय निरीक्षण न्यायाधीश (पी-6) ने खारिज कर दिया। यहां तक कि 4 दिसंबर, 2000 (पी-7) को दिए गए दूसरे अभ्यावेदन को भी माननीय निरीक्षण न्यायाधीश ने 5 जुलाई, 2001 (पी-8) को फिर से खारिज कर दिया। 14 मई, 2001 को, अपीलकर्ता ने अपने निलंबन को रद्द करने के लिए प्रतिवादी नंबर 1-उच्च न्यायालय में प्रतिनिधित्व किया, जिसके बाद 3 दिसंबर, 2001 और 2 अप्रैल, 2002 (पी-9) (कॉली) को दो अनुस्मारक दिए गए। आखिरकार, अपीलकर्ता ने अपने निलंबन आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ 2002 का सीडब्ल्यूपी नंबर 7009 दर्ज किया। उनकी रिट याचिका का निपटारा 6 मई, 2002 को इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा किया गया था और प्रतिवादियों को अपीलकर्ता (पी-10) द्वारा भेजे गए कानूनी नोटिस पर उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। उपरोक्त टिप्पणी पर डिवीजन बेंच द्वारा पारित आदेश इस प्रकार है:

"याचिकाकर्ता के वकील का तर्क है कि याचिकाकर्ता द्वारा 2 अप्रैल, 2002 को दिया गया कानूनी नोटिस, जिसकी प्रतिलिपि अनुलग्नक पी/6 के रूप में याचिका के साथ संलग्न है, का उत्तरदाताओं द्वारा प्रतिसाद नहीं दिया गया है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम उत्तरदाताओं को एक निर्देश के साथ इस याचिका का निपटारा करना उचित समझते हैं की उपर्युक्त पर कानूनी नोटिस की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर बोलने का आदेश पारित करना और उपयुक्त बनाना, इस आदेश की प्रमाणित प्रति उनके संज्ञान में लायी गयी है।

रिट याचिका तदनुसार निस्तारित की जाती है।

(एसडी.)

6 मई, 2002 स्वतंत्र कुमार।

न्यायाधीश।

(एस.डी.)

मेहताब एस. गिल

न्यायाधीश।"

आर. एल. संखला बनाम माननीय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ और अन्य 921

(एम.एम. कुमार, जे.)

(3) 24 जुलाई 2002 को अपीलार्थी के विरूद्ध पारित निलंबन आदेश निरस्त कर उसे सेवा में बहाल कर दिया गया (पी-11)। इसलिए उन्होंने 30 जुलाई, 2002 को अपनी ज्वाइनिंग रिपोर्ट सौंपी और अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश के रूप में फिर से कार्यभार ग्रहण किया (पी-12)। अपीलकर्ता ने दावा किया कि उसके निलंबन को रद्द करने के बजाय बहाली, जो लगभग 2 साल तक चली, ने यह धारणा और विश्वास पैदा कर दिया कि उसके खिलाफ कुछ भी प्रतिकूल नहीं था जो प्रतिवादी संख्या ।-उच्च न्यायालय के उदाहरण पर उचित और अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सके। हालाँकि, 3 जुलाई, 2002 को जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फ़रीदाबाद ने उन्हें सूचित किया कि, 25 जुलाई, 2002 के ज्ञापन के माध्यम से, उच्च न्यायालय ने वर्ष 1999-2000 के लिए उनकी एसीआर को सत्यनिष्ठा संदिग्ध के रूप में दर्ज किया है (पी-13) अपीलकर्ता ने दावा किया है कि वर्ष 2002 में दर्ज की गई रिपोर्ट सामान्य रूप से वर्ष 1999-2000 के अंत में दर्ज नहीं की गई थी, बल्कि वर्ष 2001-2002 की समाप्ति के बाद दर्ज की गई थी। इसलिए। इसने एक संपार्श्विक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए शक्ति का एक रंगीन अभ्यास गठित किया।

(4) तब अपीलकर्ता ने 1999-2000 की अवधि के लिए अपने एसीआर में दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों को रद्द करने की प्रार्थना के साथ 2002 का सीडब्ल्यूपी नंबर 12082 दायर किया, लेकिन उसे उसी कारण पर नई रिट याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दिया गया। अपीलकर्ता ने आरोप लगाया है कि 24 जुलाई, 2002 को उसकी बहाली और 30 जुलाई, 2002 को कार्यभार संभालने के बावजूद, उसे कोई स्टाफ और काम नहीं सौंपा गया था। उसने जिला और सत्र न्यायाधीश, फरीदाबाद को कार्य और स्टॉल (पी-15) के असाइनमेंट के लिए। पत्र लिखा था। अंततः, उन्हें 8 अगस्त, 2002 के आदेश के तहत अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया। प्रतिवादी संख्या 2-हरियाणा राज्य (पी-16) द्वारा सूचित किया गया। आदेश विशेष रूप से उल्लेख करता है कि अपीलकर्ता को हरियाणा राज्य पर लागू पंजाब सिविल सेवा खंड-1, भाग-1 के नियम 3.26 के खंड (डी) के तहत सार्वजनिक हित में सेवा से सेवानिवृत्त किया जा रहा था। अपीलकर्ता ने 8 अगस्त, 2002 के आदेश के खिलाफ एक अभ्यावेदन दायर किया, जिसमें उनकी सत्यनिष्ठा पर संदेह करते हुए प्रतिकूल टिप्पणियां की गईं (पी-17)।

(5) अपीलकर्ता का आरोप है कि प्रतिकूल टिप्पणियाँ 25 जुलाई, 2002 को दर्ज की गईं, अपीलकर्ता को सेवा में बहाल किए जाने के एक दिन बाद और उसे सेवानिवृत्त करने का प्रस्ताव संचार करने से बहुत पहले 29 जुलाई, 2002 को हरियाणा सरकार को भेजा गया था। 31 जुलाई, 2002 को उन पर प्रतिकूल टिप्पणियाँ की गईं। यह दावा किया गया है कि इन घटनाओं के क्रम से पता चलता है कि प्रतिवादी संख्या ।-उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का मन बना लिया था और उस उद्देश्य के लिए 25 जुलाई, 2002 को प्रतिकूल टिप्पणियाँ दर्ज की गईं। यह

दावा किया गया है कि पिछले वर्षों के संबंध में अपीलकर्ता का संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड अनिवार्य सेवानिवृत्ति के ऐसे किसी भी आदेश को उचित नहीं ठहराएगा।

(6) प्रतिवादी संख्या-1 उच्च न्यायालय द्वारा दायर जवाब दावा में - अपीलकर्ता द्वारा बताए गए बोर्ड के तथ्यात्मक संस्करण को स्वीकार कर लिया गया है, लेकिन रंग-बिरंगे प्रयोग के आरोपों से इनकार किया गया है। यह दावा किया गया है कि वर्ष 1999-2000 के संबंध में अपीलकर्ता के कार्य और आचरण पर माननीय श्री न्यायमूर्ति एन.के. सोढ़ी द्वारा दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों को किसी भी जांच पर आधारित करने की आवश्यकता नहीं थी। दरअसल शिकायत 19 अप्रैल, 2002 की है। जितिंदर कुमार उर्फ बबलू द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ 10 लाख रुपये की अवैध परितोषण स्वीकार करने का आरोप लगाया गया। जब अपीलकर्ता "राज करण बनाम ओंकार नाथ और "राधा राम बनाम राज करण बहल" शीर्षक वाले मामलों में सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के रूप में काम कर रहा था। जिला और सत्र न्यायाधीश (सतर्कता), हरियाणा ने शिकायत की प्रारंभिक जांच की और आरोप प्रथम दृष्टया सही पाए गए। 1 मई, 2000 (आर-1) की रिपोर्ट की एक प्रति रिकॉर्ड पर है। रिपोर्ट पर तब माननीय न्यायाधीशों द्वारा विचार किया गया था 15 मई, 2000 को आयोजित पूर्ण न्यायालय की बैठक में, जब यह निर्णय लिया गया कि अपीलकर्ता को तत्काल निलंबित कर दिया जाए और उस पर बड़ा जुर्माना लगाने के लिए आरोप पत्र दायर किया जाए। तदनुसार, उसे 16 मई, 2000 के आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया, और आरोप का मसौदा तैयार किया गया- शीट तैयार की गई थी, जिसे तीन माननीय न्यायाधीशों की समिति द्वारा विधिवत जांचा गया था और इसे अनुमोदन के लिए पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखा गया था। मसौदा आरोप-पत्र की मंजूरी का मुद्दा, जिसे अपीलकर्ता को तामील करने का प्रस्ताव दिया गया था और 50 वर्ष से अधिक आयु तक उनके बने रहने से संबंधित मामले पर एक साथ पूर्ण रूप से 26 जुलाई 2002 को पूर्ण कोर्ट की बैठक मे विचार किया गया । आरोप-पत्र का मसौदा की मंजूरी के संबंध में मामला इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हटा दिया गया कि उसी बैठक में उनकी सेवा अवधि को 50 वर्ष से अधिक न बढ़ाने का निर्णय लिया गया था।

(7) सेवा में बहाली के लिए अपीलकर्ता द्वारा 23 मई, 2000 को दिए गए अभ्यावेदन को पूर्ण न्यायालय ने 11 अगस्त, 2000 को हुई सुनवाई में खारिज कर दिया था। बाद के अभ्यावेदन पर 22 जुलाई, 2002 को आयोजित पूर्ण न्यायालय की बैठक में भी विचार किया गया था। और उन्हें दिनांक 24 जुलाई, 2002 के आदेश द्वारा सेवा में बहाल कर दिया गया। आरोपों के जवाब में कि 3 महीने का वेतन नहीं दिया गया था, उत्तरदाताओं ने 13 अगस्त, 2002 के पत्र पर भरोसा किया है, जिसमें मूल रूप से पावती अग्रेषित की गई थी। जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फ़रीदाबाद को सेवानिवृत्ति आदेश दिनांक 8 अगस्त, 2002 और रिपोर्ट दिनांक 10 अगस्त 2002 की प्राप्ति के प्रतीक के रूप में कार्यभार त्यागना होगा। उन्होंने यह भी सूचित किया कि रु. 12 अगस्त, 2002 को नोटिस की अवधि के बदले में 3 महीने के वेतन और भत्ते के भुगतान के लिए 60621 रुपये निकाले गए थे (10 अगस्त, 2002 को छुट्टी थी और 11 अगस्त, 2002 को रविवार था)। श्री दलबीर सिंह, नाजिर को अपीलकर्ता को ड्राफ्ट

सौंपने के लिए नियुक्त किया गया था, जिन्होंने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया था, जिसे बाद में 12 अगस्त, 2002 के कार्यालय पत्र के माध्यम से पंजीकृत डाक के माध्यम से भेजा गया था, और इसे रिपोर्ट के साथ वापस प्राप्त किया गया था। "चूंकि मैं सेवानिवृत्ति आदेश को चुनौती दे रहा हूं। इसलिए इसे वापस किया जाता है।" प्रतिवादी नंबर 2-हरियाणा राज्य ने 30 सितंबर, 2002 को अधिसूचना जारी की है, जिसमें अपीलकर्ता को दिनांक 8 अगस्त, 2002 के आदेश के संदर्भ में 10 अगस्त, 2002 से सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया गया है। 6 मई, 2002 को इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा जारी निर्देश के अनुसरण में स्पीकिंग ऑर्डर पारित करने के संबंध में, अपीलकर्ता द्वारा दिए गए अभ्यावेदन पर पूर्ण रूप से विचार किया गया था। 22 जुलाई, 2002 को पूर्ण कोर्ट की बैठक हुई और परिणामस्वरूप, उन्हें सेवा में बहाल कर दिया गया।

(8) विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष हारने के बाद, अपीलकर्ता ने वर्ष 1999-2000 (पी-3) के लिए उसकी सत्यनिष्ठा पर संदेह करते हुए प्रतिकूल टिप्पणियों को चुनौती दी है, उसके अभ्यावेदन को खारिज करने के आदेश (पी-6 और पी-8) और प्रतिकूल टिप्पणियों को चुनौती दी है। 25 जुलाई, 2002 (पी-13) को उन्हें सूचित किया गया, और 8 अगस्त, 2002 (पी-16) को उनके खिलाफ अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश भी पारित किया गया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित कहते हुए याचिका खारिज कर दी:

"यह स्थापित कानून है कि व्यक्तिपरक संतुष्टि की आवश्यकता वाले मामलों में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार न्यायालय व्यक्तिपरक संतुष्टि तक पहुंचने के लिए सबूतों की पर्याप्तता में नहीं जा सकता। न्यायालय को केवल इस बात से संतुष्ट होना होगा कि रिकॉर्ड पर साक्ष्य था और संबंधित प्राधिकारी का निर्णय रिकॉर्ड पर साक्ष्य पर आधारित है। व्यक्तिपरक संतुष्टि को संबंधित प्राधिकारी की ओर से दुर्भावना के आधार पर भी चुनौती दी जा सकती है। सौभाग्य से, वर्तमान मामले में, किसी के खिलाफ दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है और न ही निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किसी व्यक्ति या प्राधिकारी की ओर से दुर्भावना का सुझाव देने वाला कोई तर्क उठाया गया था।"

(9) विद्वान एकल न्यायाधीश ने **बैकुंठ नाथ दास और अन्य बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, बारीपदा और अन्य, (1)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के पांच प्रस्ताव निकाले निम्नानुसार अवधारणा करने के लिए आगे बढ़े :

"ऊपर दिए गए शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का आम तौर पर न्यायालयों द्वारा पालन किया गया है। इस प्रकार, जहां तक 8 अगस्त, 2002 के विवादित आदेश का सवाल है, यह केवल इतना कहता है "जबकि माननीय पंजाब और हरियाणा की सिफारिश पर उच्च न्यायालय, चंडीगढ़, राज्य

(1) (1992) 2 SCC 299

सरकार द्वारा हरियाणा सुपीरियर ज्यूडिशियल सर्विस के सदस्य श्री रतन लाल सांखला को जनहित में सेवा से सेवानिवृत्त करने का निर्णय लिया गया है... अनिवार्य सेवानिवृत्ति का ऐसा आदेश नहीं है सज़ा के तौर पर माना जाएगा. इसका कोई कलंक नहीं है. किसी अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने की शक्ति का उपयोग सरकारी सेवा में दक्षता में सुधार के लिए किया जाता है। जो अधिकारी अपने आधिकारिक कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक निर्वहन करने में सक्षम नहीं हैं और संदिग्ध सत्यनिष्ठा, दक्षता या अक्षमता के कारण सार्वजनिक सेवा के लिए उत्तरदायी बन जाते हैं, उन्हें सेवा में जारी रखने की आवश्यकता नहीं है। यह अक्सर कहा जाता है कि मृत लकड़ी को काटना पड़ता है..... मेरे विचार से, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, एक न्यायिक अधिकारी पूर्व- उनके विरुद्ध सत्यनिष्ठा के संबंध में एक भी प्रतिकूल प्रविष्टि के आधार पर भी परिपक्व रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया और याचिकाकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय जनहित में लिया गया है। मौजूदा मामले में, मैंने पाया कि नियम एक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की अनुमति देते हैं और याचिकाकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय नियमों के अनुसार लिया गया है।"

(10) इस तर्क को खारिज करते हुए कि अपीलकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के निर्णय में मनमानी या दुर्भावना थी, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि अपीलकर्ता के खिलाफ दायर की गई शिकायत सही तरीके से हटा दी गई थी और प्रतिवादी नंबर 1-उच्च न्यायालय ने सही सिफारिश की थी राज्य सरकार को उन्हें अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने का निर्देश दिया। विद्वान एकल न्यायाधीश का दृष्टिकोण निम्नलिखित अवलोकन से स्पष्ट है। जो इस प्रकार है:

"यह नियमों के तहत शक्तियों का एक प्रामाणिक प्रयोग है। निर्णय न तो मनमाना है और न ही दुर्भावनापूर्ण। दरअसल, सेवा में दक्षता बढ़ाने के लिए ऐसे फैसले जरूरी हैं। मेरे मन की बात। वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट की रिकॉर्डिंग, निरर्थकता, व्यक्तिपरक और प्रशासनिक है और प्रतिकूल प्रविष्टि बनाना जुर्माना लगाने के बराबर नहीं है जिसके लिए जांच की आवश्यकता होगी और संबंधित सरकारी कर्मचारी को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाएगा। आगे यह तय किया गया है कि वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट की रिकॉर्डिंग संबंधित अधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि का मामला था, इसकी शुद्धता पर अदालत द्वारा ध्यान नहीं दिया जा सकता है।"

(11) विद्वान एकल न्यायाधीश ने एक भ्रष्ट अधिकारी को बनाए रखने के खिलाफ आगे राय दी और निम्नानुसार अवधारणा की:

"चूंकि मैं एक उच्च न्यायिक अधिकारी के मामले से निपट रहा हूं, न्यायिक सेवाओं की प्रकृति ऐसी है कि एक संदिग्ध सत्यनिष्ठा की सेवा में बने रहने का मतलब भ्रष्टाचार को बढ़ावा देना होगा। इसके अलावा, किसी भी नियोक्ता पर किसी कर्मचारी को बनाए रखने की जिम्मेदारी नहीं डाली जा सकती है, जो भ्रष्ट या बेईमान आचरण में लिप्त साबित हुआ है, खासकर ऐसे संस्थान में, जिसे न्याय का मंदिर माना जाता है, जहां एक अधिकारी की पारदर्शिता और ईमानदारी दांव पर होती है और हर कदम पर

फैसला सुनाया जाता है। ऐसे मामले में सहानुभूति दिखाना संभवतः समझा जाएगा भ्रष्टाचार को नज़रअंदाज करने या सीधे तौर पर बेईमानी को प्रोत्साहित करने के रूप में भी दर्ज किया जा सकता है। इसके अलावा, किसी न्यायिक अधिकारी की ईमानदारी पर संदेह करने के आधार को सकारात्मक साक्ष्य द्वारा साबित करना असंभव है। वह व्यक्ति जिसे अधिकारी के प्रदर्शन को देखने और संबंधित याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त समग्र प्रतिष्ठा के संबंध में राय बनाने का अवसर मिला की राय पर भरोसा करना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त निचली न्यायपालिका न्यायिक प्रणाली का मुख्य केंद्र है और न्याय प्रशासन में न्यायिक प्रणाली से बेकार लकड़ी को बाहर निकालना जरूरी है, ताकि आम जनता न्याय वितरण प्रणाली में विश्वास न खोए और तत्काल मामले में, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश किसी भी तरह से गलत या अनुचित है।

यह एक कष्टकारी निर्णय है, जो न्याय व्यवस्था की गरिमा बनाए रखने और सेवा में दक्षता बढ़ाने के लिए लिया जाना है"।

प्रतिद्वंद्वी तर्क: अपीलकर्ता की दलीलें।

(12) विद्वान वरिष्ठ वकील श्री जे.के. सिब्बल ने जोरदार तर्क दिया है कि संदिग्ध सत्यनिष्ठा से संबंधित प्रतिकूल टिप्पणियों की रिकॉर्डिंग किसी न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आधार नहीं बन सकती है, खासकर जब अपीलकर्ता को निलंबित कर दिया गया था और प्रमुख पद के लिए विभागीय जांच की गई थी। 1987 के नियमों के तहत जुर्माना लंबित था। विद्वान वरिष्ठ वकील के अनुसार, प्रतिवादी नंबर 1-उच्च न्यायालय द्वारा शुरू की गई पूरी प्रक्रिया में प्रामाणिकता का अभाव है क्योंकि इसका उद्देश्य 6 मई, 2002 को इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा जारी किए गए निर्देश को विफल करना था। प्रतिवादी संख्या 1-उच्च न्यायालय को निर्देश देना न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा भेजे गए कानूनी नोटिस पर स्पष्ट आदेश पारित करेगा क्योंकि निलंबन आदेश 24 जुलाई, 2002 को तुरंत रद्द कर दिया गया था और अपीलकर्ता को सेवा में बहाल कर दिया गया था। नतीजतन, अपीलकर्ता 30 जुलाई, 2002 को जिला न्यायाधीश के रूप में अपनी ड्यूटी पर शामिल हो गया। फ़रीदाबाद ने उन्हें वर्ष 1999-2000 के लिए प्रतिकूल एसीआर सूचित किया। उसकी ईमानदारी पर संदेह है. इसलिए, पूरी प्रक्रिया अप्रासंगिक विचार से ग्रस्त है और दूषित है। विद्वान वकील ने यह भी कहा है कि प्रतिवादी नंबर 1-1 उच्च न्यायालय को प्राकृतिक न्याय के नियमों को दरकिनार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि अपीलकर्ता के खिलाफ विशिष्ट आरोप लगाए जाने पर नियमित जांच को हटाया नहीं जा सकता था। विद्वान वरिष्ठ वकील ने कहा है कि नियमित जांच को पूर्व में रद्द करने से पता चलता है कि अपीलकर्ता के खिलाफ स्थापना का मामला बहुत कमजोर था, इसलिए, यह एक संपार्श्विक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए शक्ति का एक रंगीन अभ्यास है।

(13) अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, वरिष्ठ वकील ने **राम एकबाल शर्मा बनाम बिहार राज्य और अन्य (2) और मदन मोहन चौधरी बनाम बिहार राज्य और अन्य (3)** के मामलों में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैरा 15, 16, 20 और 32 पर भरोसा जताया है और तर्क दिया कि न्यायालय पूर्व दृष्टया अहानिकर आदेश से पर्दा हटाने और आदेश का वास्तविक चेहरा पता लगाने में सक्षम है। वरिष्ठ वकील ने कहा है कि संदिग्ध सत्यनिष्ठा की एक भी रिपोर्ट को अपीलकर्ता को किसी भी कदाचार का दोषी ठहराने के लिए निर्णायक नहीं माना जा सकता है।

प्रतिवादी संख्या 1 की दलीलें:

(14) प्रतिवादी क्रमांक 1- हाईकोर्ट के विद्वान वकील श्री करमिंदर सिंह वालिया ने हालांकि तर्क दिया है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संबंध में कानून के सुस्थापित सिद्धांत यह हैं कि निकम्मे, अयोग्य और भ्रष्ट अधिकारी को बाहर का रास्ता दिखाया जाना चाहिए और जैसा कि अपीलकर्ता के वकील ने सुझाव दिया है, इसका कोई कलंक नहीं है। विद्वान वकील के अनुसार. अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश व्यापक सार्वजनिक हित में पारित किया गया है और न्यायालय को अपील न्यायालय के रूप में ऐसे निर्णय पर विचार नहीं करना चाहिए। अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में विद्वान वकील ने **शिव दयाल गुप्ता बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (4) और प्यारे मोहन लाल बनाम झारखंड राज्य और अन्य (5)** के मामलों में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

(15) पक्षों के विद्वान वकील को सुनने और हमारे सामने प्रस्तुत एसीआर के मूल रिकॉर्ड को ध्यान से देखने के बाद, हमारा मानना है कि अपीलकर्ता को इस तरह की कार्रवाई के लिए निर्धारित मापदंडों के अनुसार और व्यापक सार्वजनिक हित में सेवानिवृत्त कर दिया गया है। सबसे पहले वर्ष 1981-1982 से 1999-2000 तक अपीलकर्ता के कार्य और आचरण को दर्शाने वाली एसीआर का सारांश निर्धारित करना उचित होगा। निम्नलिखित तालिका एक विहंगम दृश्य प्रस्तुत करेगी और वह इस प्रकार है:

"हरियाणा सुपीरियर ज्यूडिशियल सर्विस के पूर्व सदस्य श्री रतन लाल सांखला के कार्य और आचरण पर वार्षिक गोपनीय टिप्पणियों का सारांश।

---

(2) (1990)3 SCC 504

(3) (1999)3 SCC 396

(4) (2005) 13 SCC 581

(5) (2010) 10 SCC 693

आर. एल. संखला बनाम माननीय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ और अन्य 927

(एम.एम. कुमार, जे.)

(11 मई 1981 से सब जज के रूप में नियुक्त)

	साल	उच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ
	1981-82	बी(औसत/संतोषजनक)
	1982-83	बी(औसत/संतोषजनक)
	1983-84	बी(औसत/संतोषजनक)
	1984-85	बी प्लस (अच्छा)
(एडीजे के रूप में पदोन्नत (2-2-1998)	1985-86	बी प्लस (अच्छा)
	1986-87	बी प्लस (अच्छा)
(अधिकारी को 16-5-2000 से	1987-88	बी प्लस (अच्छा)
निलंबित कर दिया गया था)।		
	1988-89	बी प्लस (अच्छा)
	1989-90	बी प्लस (अच्छा)
(कार्यालय आदेश दिनांक 24-7-2002	1990-91	बी प्लस (अच्छा)
द्वारा अधिकारी को बहाल कर दिया गया।)		
	1991-92	बी प्लस (अच्छा)
	1992-93	बी प्लस (अच्छा)
	1993-94	बी प्लस (अच्छा)
(अधिकारी को हरियाणा सरकार द्वारा	1994-95	बी प्लस (अच्छा)

दिनांक 8-8-2002 के आदेशों के तहत समय से पहले सेवानिवृत्त कर दिया गया था)

1995-96	बी प्लस (अच्छा)
1996-97	बी प्लस (अच्छा)
1997-98	बी प्लस (अच्छा)
1998-99	बी प्लस (अच्छा)
1999-2000	सी-अखंडता संदिग्ध

वर्ष 2000-2001 और 2001-2002 के लिए निरीक्षण टिप्पणियाँ दर्ज नहीं की गईं क्योंकि अधिकारी निलंबित रहे"।

(16) उपरोक्त तालिका के अवलोकन से पता चलेगा कि पहले 3 वर्षों के लिए, अधिकारी ने बी (औसत/संतोषजनक) रिपोर्ट अर्जित की और वर्ष 1999-2000 के लिए, उसने सी-अखंडता संदिग्ध अर्जित की है। रिकॉर्ड से पता चलता है कि अपीलकर्ता को दिनांक 16 मई, 2000 से निलंबित कर दिया गया था और 24 जुलाई, 2002 को सेवा में बहाल किया गया (पी-11)। यह अवधारणा करना सामान्य बात है कि न्यायिक सेवा इस अर्थ में रोजगार नहीं है कि एक कर्मचारी को सुबह 9:00 बजे से शाम 5:00 बजे तक ड्यूटी करनी होती है। न्यायाधीशों को संविधान और कानूनों को कायम रखते हुए बिना किसी भय या पक्षपात, दुराग्रह या दुर्भावना के अपने संप्रभु कार्य का निर्वहन करना होगा। **नवल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (6)** के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैरा 2 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य ने इसी तरह की भावनाएं व्यक्त की हैं, जिन्हें नीचे दिया गया है:

"2. सबसे पहले, यह दोहराया जाना चाहिए कि न्यायिक सेवा रोजगार के अर्थ में एक सेवा नहीं है। न्यायाधीश राज्य की संप्रभु न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए अपने कार्यों का निर्वहन कर रहे हैं। उनकी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा की अपेक्षा की जाती है संदेह से परे। यह उनकी समग्र प्रतिष्ठा में प्रतिबिंबित होना चाहिए। इसके अलावा, न्यायिक सेवा की प्रकृति ऐसी है कि वह संदिग्ध सत्यनिष्ठा वाले या अपनी उपयोगिता खो चुके व्यक्तियों की सेवा में बने रहने का जोखिम नहीं उठा सकती। यदि ऐसा मूल्यांकन समिति द्वारा किया जाता है उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और रिट याचिका में इसकी पुष्टि की गई है, बहुत असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, यह न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। विशेष रूप से क्योंकि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश प्राधिकरण की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है।" (महत्व जोड़ें)।

---

(6) (2003) 8 SCC 117

(17) इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि न्यायिक कार्यालय किसी भी अन्य सामान्य रोजगार की तुलना में कहीं अधिक मांग करता है। **चंद्र सिंह और अन्य, बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (7)** मामले में, समान विचार प्रतिध्वनित किए गए हैं, जो पैरा 47 और 48 को पढ़ने से स्पष्ट होते हैं। जो इस प्रकार है:

"47. वर्तमान मामले में, हम उच्च न्यायिक अधिकारियों के साथ काम कर रहे हैं। हमने पहले ही तीन न्यायाधीशों की समिति द्वारा की गई टिप्पणियों पर ध्यान दिया है। न्यायिक सेवा की प्रकृति ऐसी है कि संदिग्ध सत्यनिष्ठा या जिन्होंने अपनी उपयोगिता खो दी है ऐसे व्यक्तियों की सेवा में बने रहने का जोखिम नहीं उठा सकती है।

48. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता, इस प्रकार सेवानिवृत्त, अपने सेवा के दौरान अर्जित किए गए लाभ का कोई भी हिस्सा नहीं खोते हैं और इसमें कोई दंडात्मक परिणाम शामिल नहीं है और हमारे विचार में सेवानिवृत्ति को प्रथम दृष्टया और सजा के रूप में नहीं माना जाता है। ।" (महत्व जोड़ें)।

(18) उस मामले में, तीन माननीय न्यायाधीशों की एक समिति ने एक न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने का निर्णय लिया था। समिति ने सेवा अभिलेख, चरित्र पंजिका की जांच की थी. कार्य की गुणवत्ता, निपटान, सत्यनिष्ठा, सामान्य प्रतिष्ठा और क्षमता और यह राय दी गई कि अधिकारी 58 वर्ष की आयु से अधिक विस्तार का लाभ दिए जाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। तदनुसार, यह माना गया कि संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत, न्यायालय को काली भेड़ों को अनुशासित करने या मृत लकड़ी को हटा देने की दृष्टि से किसी भी समय किसी भी न्यायिक अधिकारी के प्रदर्शन का आकलन करने का पूरा अधिकार है। आई लाइट की इस संवैधानिक शक्ति को किसी भी नियम या आदेश द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त सिद्धांतों को रिकॉर्ड करने के लिए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने पहले के तीन निर्णयों अर्थात **असम राज्य बनाम रंगा मोहम्मद (8), समशेर सिंह बनाम स्टेयर ऑफ पंजाब एंड अदर (9) और हाई कोर्ट ऑफ ज्यूडिकेचर एट बॉम्बे, बनाम शिरीषकुमार रंगराव पाटिल एंड अदर (10)** मामले पर भरोसा जताया है।

(19) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **शिव दयाल गुप्ता बनाम राजस्थान राज्य (11)** के मामले में एक न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले की फिर से जांच की और इस तथ्य के बावजूद कि उनकी ईमानदारी पर संदेह था, अनिवार्य सेवानिवृत्ति की कार्रवाई को बरकरार रखा। साल 1983 में और 1984 में भी जब उनके भ्रष्ट अधिकारी होने की खबर आई थी. वर्षों पहले दर्ज की गई उनकी

(7) (2003) 6 SCG 545.
(8) AIR 1967 SC 903 (FB)
(9) (1974)2 SCC 831 (FB)
(10) (1997) 6 SCC 339
(11) (2005) 13 SCC 581

सत्यनिष्ठा संदिग्ध रिपोर्टों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2000 में उन्हें अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया था। 9 नवंबर, 2000 के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश से निपटने के दौरान, उनके आधिपत्य ने **यूपी राज्य बनाम विजय कुमार जैन, (12)** मामले में की गई टिप्पणियों पर भरोसा किया। माननीय उच्चतम न्यालाय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के अनुसार न्यायालय, किसी कर्मचारी के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड को एक राय बनाने के प्रयोजनों के लिए ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या ऐसा कर्मचारी बेकार हो गया है, इनेल टिसिएंट और उसकी उपयोगिता समाप्त हो गई है और इसलिए। उन्हें सेवा से सेवानिवृत्त करना जनहित में है। विजय कुमार जैन के मामले (सुप्रा) में फैसले के पैरा 16 में, निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई हैं:

"16. सरकारी कर्मचारी की सत्यनिष्ठा को रोकना एक गंभीर मामला है। वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि प्रतिवादी की सत्यनिष्ठा को 13 जून, 1997 के एक आदेश द्वारा रोक दिया गया था और प्रतिवादी की चरित्र पंजिका में उक्त प्रविष्टि दर्ज की गई थी। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पारित होने के दस साल के भीतर ठीक हो गया था। प्रथम न्यायालय में रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, उत्तर प्रदेश सेवा न्यायाधिकरण ने प्रतिवादी द्वारा दायर एक दावा याचिका पर, प्रविष्टि को 1997-98 से 1983-84 में स्थानांतरित कर दिया। उक्त प्रविष्टि को विलंबित अवधि में स्थानांतरित करने या अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पारित होने के दस साल से अधिक की प्रविष्टि का मतलब यह नहीं है कि प्रतिकूल प्रविष्टि की शक्ति और दंश समाप्त हो गया है। प्रतिकूल प्रविष्टि की शक्ति या दंश समाप्त नहीं होता है। केवल यह अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पारित होने के 11वें या 12वें वर्ष से संबंधित है। उपरोक्त प्रतिकूल प्रविष्टि, जिसे सेवा से उसकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए प्रतिवादी के मामले पर विचार करते समय ध्यान में रखा जा सकता था, प्रविष्टि अपने आप में प्रतिवादी को सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने के लिए पर्याप्त थी। इसलिए, हमारा विचार है कि किसी सरकारी कर्मचारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले पर विचार करते समय चरित्र सूची में बाद की प्रविष्टियों पर जोर देने के साथ संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड या गोपनीय रिपोर्ट को सरकार द्वारा ध्यान में रखा जा सकता है।

(20) उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि एक न्यायिक अधिकारी की संदिग्ध सत्यनिष्ठा से संबंधित एक प्रविष्टि यह राय बनाने के लिए पर्याप्त होगी कि उसने संस्था के लिए अपनी उपयोगिता खो दी है और इसलिए, ऐसे व्यक्ति की अनिवार्य सेवानिवृत्ति को सेवा के रूप में माना जाना चाहिए व्यापक जनहित।

(21) वर्तमान मामले के तथ्यों की अब उपरोक्त सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में जांच करने की आवश्यकता है। अपीलकर्ता ने वर्ष 1981-82, 1982-83 और 1983-84 के लिए 3 औसत रिपोर्ट पेश की थीं। वर्ष 1999- 2000 के लिए उन्होंने सी-इंटीग्रिटी डाउटफुल एंट्री हासिल की थी। पूरे रिकार्ड के परीक्षण में यह

(12) (2002) 3 SCC 641

नहीं कहा जा सका कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश किसी कानूनी खामी से ग्रस्त है। संदिग्ध सत्यनिष्ठा से संबंधित एक प्रविष्टि पर्याप्त है। किसी कर्मचारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संबंध में कोई राय बनाने से पहले प्रतिकूल टिप्पणियों का संचार अनिवार्य नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण प्यारे मोहन लाल के मामले (सुप्रा) में फैसले के पैरा 28 और 29 से स्पष्ट है, जो इस प्रकार है:

29. .....याचिकाकर्ता ने स्पष्ट दावा किया था कि प्रतिकूल प्रविष्टियों के बारे में अभी तक उसे सूचित नहीं किया गया है। उनके द्वारा यह बार-बार प्रस्तुत किया गया है कि उक्त प्रतिकूल प्रविष्टियों के विरूद्ध उनके द्वारा दिये गये अभ्यावेदन का निर्विवाद रूप से निस्तारण नहीं किया गया है। निस्संदेह सेवानिवृत्ति के लिए किसी अधिकारी का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से असंचारित प्रतिकूल प्रविष्टियों को ध्यान में रखा जा सकता है। याचिकाकर्ता ने यह खुलासा नहीं किया है कि प्रतिकूल प्रविष्टियों के खिलाफ अभ्यावेदन किस तारीख को दिया गया था। याचिकाकर्ता ने उक्त प्रतिकूल प्रविष्टियों को चुनौती नहीं दी थी। बल्कि उन्होंने केवल अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को चुनौती देना उचित समझा जो ऐसी प्रतिकूल प्रविष्टियों का परिणामी प्रभाव है। कानून के अनुसार प्राधिकरण को यह आकलन करते समय कर्मचारी के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या उसे इस तथ्य के बावजूद अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जा सकती है कि प्रतिकूल प्रविष्टियों के बारे में उसे सूचित नहीं किया गया था और उन प्रतिकूल प्रविष्टियों के बावजूद अधिकारी को पहले पदोन्नत किया गया था। इससे भी अधिक, सुदूर अतीत में भी किसी अधिकारी की सत्यनिष्ठा के संबंध में एक भी प्रतिकूल प्रविष्टि अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने के लिए पर्याप्त है। एक न्यायिक अधिकारी के मामले की जांच करने की आवश्यकता है, उसे समाज के अन्य वर्गों से अलग मानते हुए, क्योंकि वह एक अलग क्षमता में राज्य की सेवा कर रहा है। एक न्यायिक अधिकारी के मामले पर माननीय प्रमुख न्यायाधीश द्वारा विधिवत गठित उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक समिति द्वारा विचार किया जाता है और फिर समिति की रिपोर्ट पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखी जाती है। फुल कोर्ट द्वारा मामले पर समुचित विचार-विमर्श के बाद निर्णय लिया जाता है। इसलिए दिमाग का इस्तेमाल न करने या दुर्भावना से आरोप लगाने का शायद ही कोई मौका है।" (जोर दिया गया)

(22) राम एकबाल शर्मा के मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर आधारित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सिब्बल की दलीलें हमें प्रभावित करने में विफल रही हैं। सबसे पहले, उपरोक्त मामला न्यायिक सेवा से संबंधित नहीं था और दूसरे, बड़ी सजा देने के उद्देश्य से नियमित विभागीय जांच आयोजित करने और अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पारित करने के प्रस्ताव के साथ-साथ निलंबन को

हटाने पर कोई रोक नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम दुलाल दत्त (13)** के मामले में ऐसी कार्यवाही को भी मंजूरी दे दी है। उस मामले में समीक्षा समिति ने अधिकारी

को दोषी ठहराते हुए सरकार को एक रिपोर्ट सौंपी थी और फिर भी सरकार ने विभागीय जांच शुरू करने के बजाय अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित कर दिया। बैकुंठ नाथ दास मामले (सुप्रा) और अन्य निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करते हुए, यह माना गया कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश सजा का आदेश नहीं है। यह वास्तव में सरकार का विशेषाधिकार है लेकिन यह प्रासंगिक सामग्री पर आधारित होना चाहिए और इसे सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पारित करना होगा। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को दंडात्मक नहीं माना जा सकता और न ही इसका वाचिक आदेश होना आवश्यक है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण बैकुंठ नाथ दास केस (सुप्रा) के फैसले के पैरा 18 से समझा जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"18. वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक एक और तर्क यह है: इसमें अपीलकर्ता की सेवानिवृत्ति का आदेश मैसूर सिविल सेवा नियमों के नियम 235 के तहत दिया गया था। उक्त नियम की भाषा एफ.आर. 56 (जे) के अनुरूप थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ इसमें "निरपेक्ष" शब्द शामिल है जैसा कि एफ.आर. 56 (जे) में पाया जाता है। भाषा में उक्त अंतर के आधार पर एक तर्क की मांग की गई थी, लेकिन इसे यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि "पूर्ण" शब्द की अनुपस्थिति में भी, स्थिति वही रहता है। हम उक्त पहलू का उल्लेख कर रहे हैं क्योंकि हमारे समक्ष अपील में संबंधित उड़ीसा सेवा संहिता के परंतुक दो नियम 71 (ए) में भी "पूर्ण" शब्द शामिल नहीं है।

(23) कोई अन्य मुद्दा नहीं उठाया गया है।

(24) उपरोक्त चर्चा की अगली कड़ी के रूप में, यह अपील विफल हो जाती है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

एम. जैन

---

(13) (1993)2 SCC 179

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

करन वीर सिंह

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी (Trainee Judicial Officer)

बिलासपुर, यमुनानगर , हरियाणा